बॉर्डर पर दुश्मन के छक्के छुड़ाती 'पल्टन'

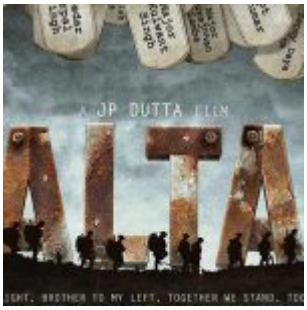

हिन्दी सिनेमा में युद्ध फिल्मों का जॉनर काफी पुराना है. श्वेत श्याम फिल्मों के युग में चेतन आनंद की हकीकत (1964) दशकों तक दर्शकों के दिलोदिमाग पर सर्वोत्तम युद्ध फिल्म के रूप में छायी रही. हकीकत की अपार लोकप्रियता में कैफ़ी आज़मी और मदन मोहन के हृदयस्पर्शी गीत-संगीत का बड़ा हाथ था. 1962 के भारत चीन युद्ध की पृष्ठभूमि पर बनी इस फिल्म में लद्दाख में दुश्मनों की बीच घिरी भारतीय सेना की एक प्लाटून को बचाने की शौर्य गाथा इतनी खूबी से पिरोई गई कि युद्ध में पराजय के बाद भी समूचे देश में सेना और सैनिकों के प्रति भावनात्मक समर्थन की हिलोर उठती रही.

हकीकत के 33 साल बाद सिनेमाघरों में दर्शकों का वही जूनून दुबारा नज़र आया जे पी दत्ता की बॉर्डर (1997) के रिलीज़ होने पर. कारगिल जंग के दो वर्ष पूर्व आई इस फिल्म में 1971 के भारत पाक युद्ध में लोंगेवाला पोस्ट पर दुश्मन से घिरे भारतीय सैनिकों के पराक्रम का अद्भुत चित्रण किया गया था. कलाकारों के बेहतरीन अभिनय अभिनय, मधुर गीत संगीत और लाजवाब निर्देशन से इतर फिल्म की जबरदस्त कामयाबी का श्रेय खुद ज्योतिप्रकाश दत्ता की सुगठित पटकथा और उनके पिता ओमप्रकाश दत्ता के लिखे ओजस्वी संवादों को मिला था. यह अलग बात है कि इसी फ़िल्म को देखते हुए दिल्ली के उपहार सिनेमाघर हादसे में साठ दर्शकों की जान चली गई थी और अनेक जख्मी हो गए थे.

अगली फिल्म रिफ्यूजी (2000) के धराशायी होते ही जेपी के सिर से बॉर्डर की रिकॉर्ड तोड़ सफलता का नशा भले ही हिरन हो गया, पर युद्ध फिल्म का फितूर छाया रहा. कारगिल जंग ख़त्म होने के तीन साल बाद उन्होंने विलंबित राग में एलओसी कारगिल (2003) बनाई पर तब तक कारगिल फैक्टर अपना असर खो चुका था. इस बीच पिता के निधन से उपजी निराशा और हताशा के दौर में उमरावजान (2006) सरीखी बेजान रीमेक बनाने के बाद गुलामी, यतीम, बँटवारा, हथियार, और क्षत्रिय का निर्देशक फिल्मों से मुँह मोड़कर करीब एक दशक तक घर बैठा रहा.

पर लागी छूटे ना जैसे फिकरे को चरितार्थ करते हुए बारह साल बाद जेपी दत्ता ने 68 वर्ष की उम्र में फिर एक बार निर्देशक की कुर्सी संभाली. बॉर्डर पर जंग में थर्राते रोमांच का रचयिता इस शुक्रवार रुपहले परदे पर दुश्मन के छक्के छुड़ाने अपनी 'पल्टन' लेकर आया. यदि उन्होंने यह फिल्म राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत वातावरण में 15 अगस्त के आसपास रिलीज़ की होती तो शायद दर्शकों का इतना टोटा न पड़ता जितना एससीएसटी एट्रोसिटी एक्ट के विरोध में भारत बंद के दूसरे दिन पड़ा.

25 करोड़ की लागत से बनी फिल्म अगर पहले दिन 1.25 करोड़ कमाने में टें बोल जाए तो बेचारे दर्शक

क्या करें. पल्टन के साथ रिलीज़ हुई लैला मजनूं तथा मनोज वाजपेयी अभिनीत गली गुलियाँ का भी बॉक्स ऑफिस पर यही हश्र हुआ. जबकि हॉलीवुड की हॉरर मूवी 'द नन' तीनो हिन्दी फिल्मों पर भारी पड़ी.

चीन के साथ 1962 के युद्ध में तो भारत को मुँह की खानी पड़ी थी लेकिन 1967 में सिक्किम पर आधिपत्य को लेकर छिड़ी जंग में भारतीय सैनिकों ने चीनियों को करारा जवाब दिया. पल्टन की कहानी इसी पृष्ठभूमि में चीन की सीमा से लगे नाथुला दर्रे में उभरकर सामने आती है. विदेश में प्रशिक्षण के दौरान चीन की सामरिक रणनीति से वाकिफ हो चुके लेफ्टिनेंट कर्नल रायसिंह यादव (अर्जुन रामपाल) को मेजर जनरल सगत सिंह (जैकी श्रॉफ) नाथुला पोस्ट पर तैनात पल्टन की जिम्मेदारी सौंपते हैं. इस पल्टन में मेजर बिशन सिंह (सोनू सूद), केप्टन पृथ्वीसिंह डागर (गुरमीत चौधरी), मेजर हरभजन सिंह (हर्षवर्धन राणे), सेकंड लेफ्टिनेंट अत्तर सिंह (लव सिन्हा), हवलदार लक्ष्मी चंद (अभिलाष चौधरी) सहित अन्य फौजी शामिल हैं.
सीमा पर चीनियों की लगातार उकसाने वाली हरकतों से तंग आकर रायसिंह अपनी पल्टन को वहां कटीले तारों की बाड़ बिछाने की हिदायत देता है ताकि बार बार होने वाली टसल को टाला जा सके. चीनी सेना के अफसर इस कार्यवाही से बौखला जाते हैं क्योंकि कंटीले तारों की बाड़ लगने पर आये दिन होने वाली झड़पों की आड़ में सिक्किम को हथियाने का उनका मंसूबा धरा का धरा रह जाता. आगे की कहानी चीनी सेना द्वारा अचानक फायरिंग शुरू करने से दोनों देशों के बीच छिड़े युद्ध के रोमांच से साक्षात्कार कराती है.

हालांकि निर्देशक के रूप में जेपी दत्ता ने फिल्म में बॉर्डर के बहुलोकप्रिय दृश्यों की पुनरावृत्ति से बचने का पूरा प्रयास किया है पर युद्ध फिल्म की पटकथा और जोशीले संवादों के मामले में वे फिर एलओसी कारगिल वाली चूक कर गए. इसीलिये फिल्म दर्शकों को बांधकर नहीं रख पाती. फिल्म में युद्ध का असली माहौल मध्यांतर के बाद बनने से दर्शक उकता जाते हैं जबकि बॉर्डर में मामूली सैन्य गतिविधियों और रसोइये बागीराम के कुए से पानी भरने जैसे दृश्य भी फिल्म का समग्र प्रभाव बढाने वाले थे. यहाँ लद्दाख में सिक्किम का प्रभाव ग्राह्य नहीं बन सका क्योंकि तकनीक भी दोनों क्षेत्रों के भौगोलिक अंतर को आसानी से पाट नहीं सकती. भारतीय व चीनी सैनिकों में बहस और टकराव के दृश्यों को दोहराव व अतिरेक से बचाया जाना चाहिये था. सैन्यकर्मियों के निजी जीवन प्रसंगों के फिल्मांकन में बॉर्डर का प्रभाव साफ़ नज़र आता है.

अलबत्ता, फिल्म की शुरुआत में 1962 की जंग में डाकिये द्वारा टेलीग्राम के जरिये घरों में सैनिकों की शहादत की सूचना पहुंचाए जाने तथा अंत में शहीद सैनिकों की आखिरी निशानियाँ परिजनों को सौंपे जाने के दृश्य वाकई मार्मिक बन पड़े हैं.

अभिनय के लिहाज से जैकी श्रॉफ के बजाय अर्जुन रामपाल, सोनू सूद, गुरमीत चौधरी, हर्षवर्धन राणे ने अपने किरदारों से पूरा न्याय किया है. *शत्रुघ्न सिन्हा के पुत्र को कलाकारों की भरमार वाली फिल्म से बॉलीवुड पदार्पण की क्यों सूझी यह समझ से परे है. नारी पात्रों में मोनिका गिल, दीपिका कक्कड़ और ईशा गुप्ता साधारण हैं. अन्नू मलिक द्वारा संगीतबद्ध जावेद अख्तर के गीतों से ज्यादा संजय चौधरी का बैकग्राउंड म्यूजिक पल्टन में जोश भरता है.

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार और फिल्म समीक्षक हैं)